मुद्रा का घटता मूल्य और भारतीय रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति*

एच.आर. खान

जब मुझे 'मुद्रा का घटता मूल्य : ऋण संकट और मुद्रास्फीति से जूझना' विषयक शीर्षक पर सेमिनार में बोलने के लिए निमंत्रण मिला तो मुझे यह समझने में कुछ समय लगा कि 'श्रिंकिंग मनी' का वास्तव में क्या मतलब है? वैश्विक संदर्भ में, श्रिंकिंग मनी को संभवतः उन्नत देशों के उन राजकोषीय अतिरेकों से जोड़ा जा सकता है जिनको मौद्रिक नीतियों के संचालन में उनके संबंधित केन्द्रीय बैंकों द्वारा पूरी तरह से समयोजित किया गया है। दूसरे शब्दों में, मध्यावधि में केन्द्रीय बैंकों द्वारा निर्मित लगातार आसान मौद्रिक और चलनिधि दशाओं के मुद्रास्फीतिक जोखिमों के बावजूद, मौद्रिक नीति के पास राजकोषीय अतिरेकों और अर्थव्यवस्था पर ऐसे अतिरेकों के प्रभाव के अधीन बने रहने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है । उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक नीति की रणनीति ने नये विकल्पों की खोज की है विशेष रूप से शून्य सांकेतिक ब्याज दर सीमा के अंतर्गत आने के पश्चात, जैसे 'क्वांटिटेटिव ईजिंग और ट्विस्ट आपरेशंस' लेकिन वृद्धि में एक टिकाऊ मजबूत रिकवरी लाने में उनकी प्रभावकारिता ने प्रत्याशाओं को झूठा बना दिया है। इस अर्थ में, यह 'मौद्रिक नीति के लिए घटता दायरा' हो सकता है। भारत को अपनी मौद्रिक नीति के संचालन में इन दबावों का सामना नहीं करना पड़ता है। इसलिए, पुनर्विचार करने पर मैंने देशी समिष्ट आर्थिक संदर्भ में एक उत्तर खोजने की कोशिश की है। क्या श्रिंकिंग मनी से तात्पर्य 'मुद्रा के कम होते मूल्य' से है क्योंकि हम दो वर्षों से अधिक समय से लगातार उच्च मुद्रास्फीति का अनुभव कर रहे हैं? क्या यह इसके बारे में है कि मौद्रिक नीति सरकार के बड़े-बड़े उधार कार्यक्रमों में मुद्रास्फीति के लिए तथा अपर्याप्त राजकोषीय और मुद्रास्फीति पर पूर्ति पक्ष के दबावों के निराकरण के लिए अन्य संरचनात्मक प्रतिक्रियाओं के लिए क्या करेगी ? मैंने महसूस किया कि यह दूसरे तरह की व्याख्या है क्योंकि मैं रिज़र्व बैंक से हूँ, यह एक ऐसी संस्था है जो मुद्रास्फीति को रोकने और मुद्रास्फीतिक प्रत्याशाओं को नियंत्रित करने में मौद्रिक नीति के प्रभाव पर लगभग पिछले एक वर्ष अथवा उससे अधिक समय से जनता की पैनी निगाहों के अंतर्गत है।

2. मेरे लिए इस पर बोलना ठीक नहीं होगा कि निकट भविष्य में मौद्रिक नीति क्या करेगी, विशेष रूप से उस समय जब 16 दिसंबर को हमारी मौद्रिक नीति की मध्य तिमाही समीक्षा है। बहुत से ऐसे बाजार विश्लेषक हैं जो नीति घोषणा के पहले रिज़र्व बैंक की कार्रवाई के बारे में अनुमान लगाने का प्रयास करते हैं और आप सभी प्रमुख बिजनेस स्कूल के संकाय और विद्यार्थी होने के नाते दैनिक वित्तीय समाचार पत्रों से पहले ही इस प्रकार की जानकारी प्राप्त कर रहे होंगे। मुझे विश्वास है कि आपमें से कई लोगों के मुद्रास्फीति पर अपने-अपने मूल्यांकन होंगे तथा रिज़र्व बैंक से आप ऐसी आशा रखते होंगे कि इसको क्या करना चाहिए अथवा क्या नहीं? अपने संबोधन में मैं उन उपायों को शामिल करने का प्रयास करूंगा जिनको हमने निर्धारकों के अर्थ में हाल की मुद्रास्फीति के मार्ग में देखा है, और आज मौद्रिक नीति इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण क्यों हो गई है यद्यपि यह नीति अकेले एक कम और स्थिर मुद्रास्फीति कारक वातावरण को सुनिश्चित करने में सक्षम नहीं है। मौद्रिक नीति मुद्रास्फीति को तेजी से कम कर सकती है लेकिन यह केवल वृद्धि के काफी अधिक त्याग की लागत पर हो सकती है परंतु यह उच्च मुद्रास्फीति की तरह समान रूप से वांछनीय नहीं है। कम मुद्रास्फीति और सुदृढ़ वृद्धि दोनों आर्थिक कल्याण के लिए आवश्यक हैं। राजकोषीय नीति की भी मुद्रास्फीति के प्रबंधन में एक बड़ी भूमिका है - अल्पकाल में सरकारी मांग को नियंत्रित करने के माध्यम से और मध्यावधि में आपूर्ति दशाओं को बढ़ाने के माध्यम से। मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता समर्थनकारी राजकोषीय वातावरण में सुधार लाती है। इसलिए मैं इस संबोधन में कुछ राजकोषीय मुद्दों को भी शामिल करूंगा और ऐसा करते समय मैं इस सेमिनार के समग्र विषय के कुछ अन्य आयामों को भी स्पर्श करना करूंगा।

3. अब मैं अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न की शुरुआत करना चाहता हूँ कि रिज़र्व बैंक द्वारा मुद्रास्फीति-रोधी कार्रवाईयों के भी बावजूद

* दि एशियन स्कूल ऑफ बिजनेस मैनेजमेंट द्वारा 10 दिसंबर 2011 को आयोजित 'मुद्रा का घटता मूल्यः ऋण संकट और मुद्रास्फीति से जूझना' विषय पर भुवनेश्वर में 10वें राष्ट्रीय प्रबंधन सेमिनार के अवसर पर भारतीय रिज़र्व बैंक के उप गवर्नर श्री एच.आर. खान द्वारा किया गया संबोधन। श्री सीतिकंठ पटनाईक और श्री सुरजीत बोस से प्राप्त बहुमूल्य योगदान के लिए वक्ता उनके प्रति हार्दिक आभारी है।

मुद्रास्फीति क्यों बढ़ी है? जब हम कहते हैं कि मुद्रास्फीति अब से लगभग दो वर्ष पहले की तुलना में लगातार महीनों तक 'उच्च' रही, तो हमें इसे एक सापेक्ष धारणा के रूप में देखना होगा। यह या तो पिछले औसतों अथवा मुद्रास्फीति के प्रति रिज़र्व बैंक के लक्ष्य के सापेक्ष में उच्च हो सकती है। वैश्विक संकट से पहले, 2003-04 से 2007-08 की पांच वर्ष की अवधि में औसत थोक मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति 5.5 प्रतिशत थी। जनवरी 2010 से थोक मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति 22 क्रमिक महीनों में प्रत्येक में 8 से 11 प्रतिशत के दायरे में बनी हुई है। यह उससे अधिक है जिसे हमने संकट के पहले अनुभव किया था। फिर भी, रिज़र्व बैंक के मौद्रिक नीति वक्तव्य से पता चलता है कि रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति का उद्देश्य मुद्रास्फीति को 4 से 4.5 प्रतिशत के दायरे में अनुकूलित करना और रोक रखना है। इसलिए हाल की मुद्रास्फीति का रुझान साफ तौर पर रिज़र्व बैंक के कथित कंफरटेबल लेवल से ऊपर है। तब, उच्च मुद्रास्फीति का इस प्रकार जारी रहना क्या दर्शाता है?

4. भारत को पहले ही द्वि-अंकीय मुद्रास्फीति का सामना करना पड़ा जब इसे वैश्विक वित्तीय संकट से संक्रमण का सामना करना पड़ा। भारत अपने देश में वित्तीय संकट से बच गया लेकिन इसकी वृद्धि में कुछ गिरावट आई। वैश्विक पण्य मूल्यों में तीव्र गिरावट के लाभकारी प्रभाव सामने आए साथ ही 2008-09 के अंत तक मांग में आई देशी कमी से मुद्रास्फीति में काफी अधिक गिरावट हुई जो 2009-10 के पहले 7 महीनों तक जारी रही, इस समय मुद्रास्फीति 2 प्रतिशत के नीचे बनी रही। इस अवधि के दौरान दो महीनों से अधिक वर्ष-दर-वर्ष मुद्रास्फीति वास्तव में ऋणात्मक रही। उस समय कई लोगों ने रिज़र्व बैंक से पूछना शुरू कर दिया कि क्या भारत अपस्फीति के जोखिम का सामना कर सकेगा। इसके पश्चात मुद्रास्फीतिक दशाएं इतनी तेजी से कैसे खराब हुई हैं? मेरा कहना है कि ऐसा क्रमिक चरणों में हुआ है, मुद्रास्फीति के निर्माण में थोक मूल्य सूचकांक में शामिल कई मदों का योगदान रहा है।

5. 2009-2010 में दक्षिण-पश्चिम मानसून में 22 प्रतिशत की कमी एक आपूर्ति आघात के रूप में आयी। उच्च खाद्य स्टॉक और कृषि क्षेत्र के लचीले उत्पाद के बावजूद, आपूर्ति आघात से जुड़ी प्रतिकूल प्रत्याशाओं ने वर्ष के दौरान खाद्य मुद्रास्फीति को उच्च स्तर पर बनाये रखा। 2009-10 की पहली छमाही में खाद्येतर मुद्रास्फीति बहुत कम रही, इस अवधि के दौरान कुछ महीनों में खाद्य मुद्रास्फीति का हेडलाइन थोक मूल्य मुद्रास्फीति में लगभग 100 प्रतिशत का योगदान रहा। तब 2010-11 और इस वर्ष सामान्य दक्षिण-पश्चिम मानसून में रिकार्ड खाद्यान्न उत्पादन के बावजूद, खाद्य मुद्रास्फीति निरंतर आधार पर क्यों उच्च बनी हुई है? क्या हाल के वर्षों में खाद्य मुद्रास्फीति की गतिशिलता में परिवर्तन आया है? हाल के कुछ रुझानों से ऐसा मालूम होता है, इनमें शामिल हैं:

(क) *बढ़ता मांग आपूर्ति असंतुलन प्रोटीन आधारित खाद्य वस्तुओं में अधिक है* - खाद्य वस्तुओं का उत्पादन और उत्पादकता संवर्धन देश की बढ़ती मांग और बढ़ती जनसंख्या के आय स्तर के साथ-साथ नहीं चल पा रहा है। जैसीकि उम्मीद की जाती है, प्रति व्यक्ति आय बढ़ने से भोजन का स्वरूप भी मोटे अनाज से प्रोटीन संपन्न वस्तुओं में परिवर्तित हो सकता है। हाल के वर्षों में भारत में बेनेट के नियम के अनुरूप अनुभव किया जा रहा है जिसमें कहा गया है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, कैलोरी के अत्यधिक महंगे साधनों की तुलना में खाने के थाल में स्टार्चयुक्त मोटे अनाज की मात्रा घटती है। दाल, दूध, अंड़ा, गोस्त और मछली जैसी प्रोटीन आधारित खाद्य वस्तुओं की आपूर्ति उतनी नहीं बढ़ी है जितनी की ऊंचे दामों के जवाब में बढ़नी चाहिए थी जबकि मांग लगातार बढ़ रही है। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के व्यय स्वरूप के आंकड़ों से पता चलता है कि कुल व्यय में प्रोटीन खाद्य पर व्यय का हिस्सा बढ़ा है। कुछ समय पर तो प्रोटीन से संबंधित मुद्रास्फीति में संरचनात्मक असंतुलन नवंबर 2009 और जुलाई 2010 के बीच क्रमिक रूप से 8 महीनों में 25 से 34 प्रतिशत के दायरे में रहा।

(ख) *ग्रामीण मजदूरी में काफी अधिक बढ़ोतरी हुई है विशेष रूप से महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के बाद की अवधि में* - 1.2 बिलियन आबादी वाले प्रजातंत्र में वृद्धि प्रक्रिया को मजबूत बनाने के लिए समावेशी विकास आवश्यक है, लेकिन समावेशी विकास और मुद्रास्फीति के बीच कभी-कभी आपसी तालमेल देखा जा सकता है, विशेष रूप से उस समय जब मजदूरी में वृद्धि उत्पाकदता में तदनुरूपी वृद्धि को नहीं दर्शाती है और क्रय शक्ति में आई बढ़ोतरी (उच्च अंतरण) में ऐसे उपाय नहीं शामिल किये जाते हैं जो ऐसी वस्तुओं की आपूर्ति दशा में सुधार ला सकते हो जिन पर इन उच्च राजकोषीय अंतरणों को खर्च किया जाना है। पिछले कई वर्षों से तुलना करने पर ग्रामीण मजदूरी में वृद्धि के आंकड़ों से पता चलता है कि दर में वृद्धि ग्रामीण क्षेत्र की तुलनीय ग्राहक

मूल्य मुद्रास्फीति से अधिक रही है। प्रति वर्ष 100 दिन का रोजगार गारंटी कार्यक्रम मनरेगा 2006 से चालू है। ग्रामीण क्षेत्र में मजदूरी दबाव के लिए मनरेगा को आंशिक तौर पर उत्तरदायी माना जा सकता है, इस मजदूरी दबाव को प्रति व्यक्ति व्यय के स्तर में काफी अधिक बढ़ोतरी होने के रूप में देखा जाता है। उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि औसत सांकेतिक प्रति व्यक्ति व्यय में पहली छमाही (2000-05) की तुलना में पिछले दशक (2005-10) की दूसरी छमाही में तेजी से बढ़ोतरी हुई है जो ग्रामीण क्षेत्र में 3.6 प्रतिशत से 10.5 प्रतिशत और शहरी क्षेत्र में 5.3 प्रतिशत से 10.9 प्रतिशत हुई है। लगभग 3 प्रतिशत की कृषि क्षेत्र में रुझान वृद्धि के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्र में उच्च दर से हुई मजदूरी वृद्धि लागत प्रेरित और मांग प्रेरित दोनों प्रकार के मुद्रास्फीतिक दबाव ला सकती है।

(ग) *न्यूनतम समर्थन मूल्य में बड़ी-बड़ी वृद्धियां* - खाद्य मुद्रास्फीति के प्रति इस प्रकार के दृष्टिकोण के निहितार्थ को देखते हुए, भारत में कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए लाभकारी मूल्य प्रोत्साहन की भूमिका पर लंबे समय से चर्चा होती रही है। यद्यपि खाद्य के सब्सिडी प्रावधान से जनसंख्या का एक भाग लाभ उठाता है, परंतु न्यूनतम समर्थन मूल्य में बड़ी-बड़ी वृद्धियां बाजार मूल्य को बढ़ाकर खाद्य मुद्रास्फीति पर और दबाव डालती हैं। यद्यपि न्यूनतम समर्थन मूल्य से नीचे अथवा बाजार मूल्य पर जो कभी-कभी घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य से नीचे चले जाते हैं, पर प्रोक्योरमेंट की रिपोर्टें कभी-कभार प्राप्त होती रही हैं। परंतु सामान्य रूप से देखा जाये तो बाजार मूल्य घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य पर अथवा उसके ऊपर बने रहे हैं। हाल के वर्षों में न्यूनतम समर्थन मूल्य की दर में काफी अधिक वृद्धि की गयी है। उदाहरण के लिए, 2007-2011 के दौरान चावल के न्यूनतम समर्थन मूल्य में 13.6 प्रतिशत औसत वृद्धि हुई जबकि 2003-07 के दौरान यह 1.8 प्रतिशत थी। तदनुरूपी अवधियों में गेहूँ के न्यूनतम समर्थन मूल्य में क्रमशः 11.3 प्रतिशत और 4.0 प्रतिशत की वृद्धियां हुई हैं। उच्च न्यूनतम समर्थन मूल्य सामान्य रूप से उच्च इनपुट लागत को दर्शाते हैं जैसे मजदूरी, चारा, डीज़ल तेल, उर्वरक और कीटनाशक। लाभकारी मूल्य के अभाव में जब इनपुट लागत बढ़ती है तो कृषि उत्पादन बुरी तरह से प्रभावित होता है जो मुद्रास्फीतिकारी हो सकता है। इसी प्रकार, उच्चतर न्यूनतम समर्थन मूल्य, जो उच्चतर इनपुट लागत को दर्शाते हैं, भी मुद्रास्फीतिकारी हो सकते हैं। इस विषम स्थिति का सर्वोत्तम संभव समाधान उच्च उत्पादकता हो सकता है। भारत में कृषि क्षेत्र के लिए एक प्रमुख मध्यमकालिक चुनौती उत्पादकता बढ़ाना रहा है। जी20 के देशों के बीच चावल और गेहूँ में भारत की उत्पादकता सबसे कम है। हरित क्रांति के फलस्वरूप उपज में काफी अधिक वृद्धि के बाद, हाल के दो दशकों में उपज का स्तर सापेक्षिक रूप से स्थिर हो गया है जबकि आबादी और प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी हुई है तथा निर्धनता के नीचे की जनसंख्या में कमी आई है। उक्त को परिलक्षित किया करते हुए मांग बढ़ रही है जबकि खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में ज्यादा सुधार नहीं हुआ है। अधिक उत्पादकता केवल ऐसा तरीका है जिससे किसानों की आय में सुधार हो सकता है साथ ही इससे खाद्यान्न मुद्रास्फीति को रोकने में भी मदद मिल सकती है।

(घ) *वैश्विक खाद्य के उच्च मूल्य* - यद्यपि भारत के अधिकांश खाद्यान्न का व्यापार भौतिक रूप में देश के बाहर नहीं किया जाता है, फिर भी अंतरराष्ट्रीय मूल्य भारतीय मूल्यों को प्रभावित कर रहे हैं। यद्यपि वैश्विक संकट के पहले वैश्विक खाद्य के मूल्यों में तीव्र गति से वृद्धि हुई थी, परंतु संकट के पश्चात इनमें कुछ कम आयी, लेकिन हाल की अवधि में ये कीमतें संकट पूर्व के स्तर पर पहुंच गईं।खाद्य और कृषि संगठन तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय एजेन्सियों ने विभिन्न अनुमान लगाए हैं कि कृषि मूल्य, जो खाद्य, ईंधन और चारे की आवश्यकताओं के चलते बढ़ती मांग को दर्शाते हैं, मध्यावधि में उच्च स्तर पर बने रहे। भारत के लिए यह महत्त्वपूर्ण है यद्यपि वैश्विक खाद्य के मूल्य देशी खाद्य मूल्य के नीचे आ सकते हैं, भारत के पास खाद्य मुद्रास्फीति को रोकने के लिए साधन के रूप में आयात का विकल्प सीमित हो सकता है, क्योंकि एक बार जब भारत क्रेता पक्ष की ओर से वैश्विक बाजार में प्रवेश करेगा तो हो सकता है कि वैश्विक मूल्यों में वृद्धि हो जाए। वैश्विक पण्य बाजार विभिन्न प्रमुख देशों की मांग-आपूर्ति की स्थितियों पर प्रगामी तरीके से निगरानी रखते हैं तथा कभी-कभी किसी देश में मांग की तुलना में आपूर्ति में कमी का आकलन अंतरराष्ट्रीय मूल्यों को बढ़ा सकता है।

(ङ) *आपूर्ति श्रृंखला में अवरुद्धताएं:* भारत जैसे आकार और आबादी वाले बड़े देश में संवितरण ढांचा जो फार्म स्तर से

लगाकर खुदरा स्तर तक फैला है, विभिन्न स्तरों पर मूल्य नियंत्रण में एक प्रमुख भूमिका निभाता है और इस प्रकार मुद्रास्फीति का अनुकूलन होता है। इस संबंध में 1-2-3-4 के रूपक को यह दर्शाने के लिए अक्सर उद्धृत किया जाता है कि कैसे किसान को एक रुपया मिलता है और उपभोक्ता को चार रुपये चुकाने पड़ते हैं तथा शेष मध्यस्थ की जेब में चले जाते हैं। मुद्रास्फीति के परिवेश में बिचौलियों को लाभ पहुंचाने के लिए आपूर्ति श्रृंखला पर नियंत्रण करने की प्रवृत्ति हो सकती है। इसके लिए स्पर्धा विरोधी व्यवहारों से निपटने के लिए अत्यधिक स्पर्धा और सख्त नियमों की जरूरत होगी। बेहतर यातायात और भंडारण सुविधा से भी लागत में कमी आ सकती है और नाशवान उत्पादों की मात्रा कम हो सकती है। बहु ब्रांड खुदरा को आपूर्ति श्रृंखला में सुधार के लिए एक संभावित साधन के रूप में देखा जा रहा है, यह श्रृंखला उत्पादकों और उपभोक्ताओं दोनों के लिए लाभदायक होगी। भारत में इस विषय पर हुई वर्तमान चर्चा और भिन्न-भिन्न अंतरराष्ट्रीय अनुभव को देखते हुए, बहु ब्रांड खुदरा को एक संभावित साधन के रूप में देखना होगा जिसकी प्रभावशीलता आगे आने वाले समय में ज्ञात हो पाएगी।

6. खाद्य के अलावा, ईंधन मूल्य दबाव के एक दूसरे प्रमुख साधन रहे हैं जो कच्चे पेट्रोलियम मूल्य के अंतरराष्ट्रीय रुझान से सीधे तौर पर संबद्ध हैं। भारतीय बास्केट के कच्चे मूल्य को जुलाई 2008 में अर्थात ठीक वैश्विक संकट के पहले प्रति बैरल 132.5 अमरीकी डॉलर की ऊंचाई पर मापा गया। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं पर वैश्विक संकट का इतना अधिक प्रभाव था कि इसने अंतरराष्ट्रीय तेल के मूल्यों को तेजी से गिरा दिया और भारतीय बास्केट के कच्चे तेल के मूल्य फरवरी 2009 में घटकर 43.2 अमरीकी डॉलर प्रति बैरल हो गये। तब से, उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि की गति के कमजोर रहने के बावजूद, तेल के मूल्य पुनः उच्च स्तर पर वापस आ गये। अप्रैल 2011 में भारतीय बास्केट के कच्चे तेल के मूल्य प्रति बैरल 118.6 अमरीकी डॉलर हो गये, इसके बाद इनमें कुछ कमी आयी। लेकिन ये अभी भी 110 अमरीकी डॉलर से 105 प्रति बैरल के बीच उच्च स्तर पर बने हुए हैं।

7. भारत में अंतरराष्ट्रीय कच्चे तेल के मूल्य परिवर्तन को प्रशासित मूल्य निर्धारण प्रणाली के कारण पेट्रोलियम उत्पादों के देशी मूल्यों में पूरी तरह से पासथ्रू नहीं किया जाता है। जून 2010 से पेट्रोल के मूल्यों पर से नियंत्रण हटा दिया गया है, लेकिन डीज़ल, एलपीजी और पीडीएस केरोसिन के मूल्यों पर अभी भी नियंत्रण रखा गया है जिससे उपभोक्ताओं को वैश्विक कच्चे तेल के उच्च मूल्यों से बचाया जा सके, इसके कारण तेल के मूल्यों में हरेक वृद्धि होने पर सब्सिडी का बिल बढ़ जाता है। अल्पकाल में प्रशासित मूल्यन के कारण मुद्रास्फीति का प्रभाव छुप जाता है लेकिन राजकोषीय स्थिति पर सब्सिडी जनित दबाव मध्यावधि में मुद्रास्फीतिक दशाओं के लिए जोखिम बन जाते हैं। सब्सिडीकृत मूल्यन वांछित स्तर पर ऊर्जा संरक्षण को प्रोत्साहित नहीं करता है, जो आवश्यक है, यह तेल आयात पर हमारी अत्यधिक निर्भरता को देखते हुए महत्त्वपूर्ण है। 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-13 से 2016-17) के दृष्टिकोण पत्र के मसौदे के अनुसार तेल पर भारत की निर्भरता 2010-11 के 76 प्रतिशत से बढ़कर योजना के अंत तक 80 प्रतिशत होने की आशा है। इस अवधि के दौरान प्राकृतिक गैस पर आयात निर्भरता 19 प्रतिशत से बढ़कर 28.4 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया गया है तथा कोयले के मामले में यह वृद्धि 19.8 प्रतिशत से 22.1 प्रतिशत होगी। मध्यावधि में तेल के मूल्यों के रुझान के बारे में हाल के मूल्यांकनों से पता चला है कि तेल के मूल्यों में आगे केवल बढ़ोतरी होगी इनमें कोई कमी नहीं होगी। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि की दुर्बलता की लंबी अवधि के बावजूद, तेल के मूल्य लगातार कई महीनों तक बढ़ने जारी रहे, वैश्विक अर्थव्यवस्था की उच्चतर वृद्धि के टिकाऊ अवस्था में वापस आने पर भी तेल के मूल्यों में बढ़ोतरी जारी रही। यह स्थिति तब तक नहीं बदलेगी जब तक कोई प्रौद्योगिकी क्रांति ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत की उपलब्धता में काफी अधिक सुधार नहीं कर देती जो फिलहाल बिल्कुल असंभव लगती है। भारत में तेल के आयात पर निर्भरता की अधिकता और मध्यावधि में तेल के मूल्यों के प्रत्याशित रुझान से पता चलता है कि 1.2 बिलियन आबादी के लिए ईंधन और बिजली का सब्सिडीकृत प्रावधान केवल तभी संभव होगा जब एक बहुत कमजोर राजकोषीय स्थिति हो, इससे मुद्रास्फीति बढ़ेगी और ईंधन के सब्सिडीकृत प्रावधान के पीछे निहित उद्देश्य की पराजय होगी। कुछ मदों में प्रशासित मूल्य व्यवस्था के फलस्वरूप छुपी मुद्रास्फीति के बावजूद, अंतरराष्ट्रीय तेल के मूल्यों में बढ़ोतरी के कारण ईंधन समूह की मुद्रास्फीति अब से लगाकर 21 महीनों तक दो अंकों में रही है।

8. इस प्रकार, मुद्रास्फीति की प्रक्रिया प्राथमिक खाद्य और ईंधन से शुरू हुई और ये दोनों मिलकर थोक मूल्य सूचकांक में कुल भारांकों का 29 प्रतिशत हैं। इनके मूल्यों में वृद्धि ने उच्च इनपुट लागत और उच्चतर मुद्रास्फीतिक प्रत्याशाओं के माध्यम से खाद्येतर

और ईंधनेतर (अथवा मूल) मुद्रास्फीति को बढ़ाया है, ये प्रत्याशाएं मजदूरी पुनरीक्षण में परिलक्षित होती हैं। सुदृढ़ मांग दशाओं की मौजूदगी में स्पिलओवर तीव्र हो सकता है जिसके कारण सामान्यीकृत मुद्रास्फीतिक प्रक्रिया आएगी। भारत में खाद्येतर ईंधनेतर विनिर्मित उत्पाद की मुद्रास्फीति 2009-10 की पहली छमाही में ऋणात्मक रही और बहुत कम अर्थात दूसरी छमाही में 4 प्रतिशत से कम बनी रही। 2010-11 के पहले आठ महीनों में यह 5.3 प्रतिशत से 5.9 प्रतिशत के दायरे में रही। फरवरी 2011 से यह लगातार 9 महीनों तक 7 प्रतिशत अथवा उसके ऊपर बनी रही जो स्पष्ट रूप से रिज़र्व बैंक के वांछित स्तर से ऊपर है।

9. अब मैं उन कुछ प्रश्नों का उत्तर देना चाहूँगा जिनका सामना हाल के वर्षों में रिज़र्व बैंक ने किया है। कई लोगों ने प्रश्न उठाया है कि जब अधिकांश मुद्रास्फीतिक दबाव खाद्य और ईंधन से संबंधित थे और जिनका मौद्रिक नीति कार्रवाइयों पर कोई प्रभाव नहीं था तो रिज़र्व बैंक ने 13 बार अपनी नीति दर को क्यों बढ़ाया। हां, यह कहना सही है कि खाद्य मुद्रास्फीति उच्चतर नीतिगत दरों के कारण घट नहीं सकती लेकिन मौद्रिक नीति कारवाई का औचित्य प्रमुख दो दृष्टियों से देखना होगा। एक, सामान्यीकृत मुद्रास्फीतिक प्रक्रिया कुल मांग के अभाव में जारी नहीं रह सकती है और इस प्रकार यदि मौद्रिक नीति कुल मांग को रोकने में सफल होती है तो इससे मुद्रास्फीति को कम करने में मदद मिल सकती है। मांग में नीति प्रेरित कमी के माध्यम से खाद्येतर ईंधनेतर विनिर्मित उत्पादों संबंधी मुद्रास्फीति को रोकना मौद्रिक नीति के लिए संभव हो सकता है। दो, यदि मौद्रिक नीति अप्रत्यक्ष रूप से खाद्य और ईंधन प्रत्याशाओं का निराकरण नहीं सकती है तो यह निश्चित रूप से खाद्य और ईंधन की उच्च मुद्रास्फीति के प्रभाव के कारण खराब होती मुद्रास्फीतिक प्रत्याशाओं को रोक सकती है। यदि मौद्रिक नीति मुद्रास्फीतिक प्रत्याशाओं को रोक सकती है तो यह अर्थव्यवस्था के मजदूरी और मूल्य निर्धारण करने वाले तरीके को प्रभावी कर सकती है और इस प्रकार यह मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने में मदद कर सकती है।

10. एक संबंधित प्रश्न जिसे बहुत से लोगों ने पूछा है कि भारत में मौद्रिक नीति कितनी प्रभावी है और क्या मुद्रास्फीति-रोधी नीतियों ने वृद्धि की काफी बढ़ी मात्रा में बलि ली है। हमें इस संदर्भ में यह बात समझने की आवश्यकता है कि मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता अर्थव्यवस्था के ढांचे और वित्तीय क्षेत्र के विकास के स्तर पर निर्भर होती है। कुल मांग की संघटना में मोटे तौर पर तीन प्रकार की मांगे आती हैं अर्थात सरकारी मांग, निजी खपत मांग और निजी निवेश मांग। सरकारी मांग सामान्य तौर पर उच्च नीतिगत दरों के प्रति बहुत अधिक संवेदनशील नहीं होती हैं। भारत में निजी खपत मांग भी उस सीमा तक ऋण द्वारा वित्तपोषित नहीं है जिस सीमा तक हम उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में देखते हैं। इस प्रकार, निजी खपत मांग भी उच्च ब्याज दरों के प्रति बहुत अधिक संवेदनशील नहीं है। निजी निवेश मांग उच्च नीति दरों के प्रति सापेक्षिक रूप से अधिक संवेदनशील हो सकती है और निवेश मांग में गिरावट का वृद्धि त्याग पर कुछ प्रभाव पड़ सकता है। इसको स्वीकार करते हुए, रिज़र्व बैंक अपनी मौद्रिक नीति के परिचालन में वृद्धि - मुद्रास्फीति के लक्ष्यों को संतुलित करता है। जब तक मुद्रास्फीति प्रक्रिया व्यापक तौर पर खाद्य और ईंधन मुद्रास्फीति से प्रेरित है तब तक रिज़र्व बैंक की सुविचारित मौद्रिक कड़ाई उस मौद्रिक नीति के अनुरूप है जिसे वह आपूर्ति आघातों की उपस्थिति में लागू करती है। जब मुद्रास्फीति सामान्यीकृत और लगातार स्वरूप की हो गई तो रिज़र्व बैंक को, मार्जिन पर वृद्धि त्याग की बात स्वीकार करते हुए, मौद्रिक नीति के मुद्रास्फीति रोधी उपाय करने पड़े। निकट भविष्य में उच्च मुद्रास्फीति वृद्धि के लिए समस्याएं खड़ी कर सकती है इसको देखते हुए यह आवश्यक हो गया था। उच्च मुद्रास्फीति के वातावरण में, बचत और निवेश दोनों गतिविधियां बुरी तरह से प्रभावित हो सकती हैं। भारत के आनुभविक अनुमान बताते हैं कि भारत की न्यूनतम मुद्रास्फीति 4 से 6 प्रतिशत के दायरे में होनी चाहिए और लगातार न्यूनतम स्तर से अधिक की मुद्रास्फीति वृद्धि को नुकसान पहुंचा सकती है। इस प्रकार, नीति दरों में मुद्रास्फीति रोधी वृद्धियां अल्पकाल में वृद्धि रोधी लग सकती हैं, लेकिन, इस प्रकार का नीतिगत रुझान मध्यम अवधि में कम मुद्रास्फीति और उच्च वृद्धि के लक्ष्य को पाने के लिए आवश्यक है। चूंकि मौद्रिक नीति एक अंतराल में कार्य करती है, गैर मुद्रास्फीतिक उच्च वृद्धि का मध्यावधि लक्ष्य रिज़र्व बैंक द्वारा की गयी मौद्रिक नीति कार्रवाइयों की व्याख्या करना हैं। मौद्रिक नीति कार्रवाइयों का संप्रेषण वित्तीय क्षेत्र के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। विशाल अनौपचारिक क्षेत्र, जिसकी औपचारिक वित्त में सीमित पहुंच है, मौद्रिक नीति संप्रेषण की गति को धीमा कर सकता है। भारत में वित्तीय वंचना की भारी संख्या को देखते हुए, हाल के वर्षों में रिज़र्व बैंक ने वित्तीय समावेशन पर बहुत अधिक महत्त्व दिया है जिससे औपचारिक वित्तीय क्षेत्र में सहभागिता वाली और लाभ उठाने वाली जनसंख्या का प्रतिशत बढ़ने की आशा है। वित्त तक आसान पहुंच के कारण वृद्धि के अवसरों का बेहतर तरीके से उपयोग किया जा सकता है साथ ही मौद्रिक नीति संप्रेषण की प्रभावशीलता को भी मजबूत किया जा सकता है। नीति संप्रेषण

में देश-विशिष्ट अंतराल को मानते हुए सामान्य रूप से यह आशा की गयी कि मौद्रिक नीति का अंतरालगत प्रभाव मांग को कम करेगा जिससे अंत में मुद्रास्फीति को रोकने में मदद मिलेगी। तदनुसार, मार्च 2012 तक मुद्रास्फीति अनुमान घटकर 7 प्रतिशत हो गया, अक्तूबर 2011 के मौद्रिक नीतिगत वक्तव्य में वृद्धि अनुमान को नीचे की ओर घटाकर 8 प्रतिशत से 7.6 प्रतिशत कर दिया गया। निम्नगामी संशोधन, पूर्व मौद्रिक कार्रवाइयों के प्रत्याशित प्रभाव और देशी वृद्धि पर वैश्विक आर्थिक दशाओं के विनाशकारी प्रभाव के अनुरूप हैं। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के आउटलुक के बारे में नकारात्मक सूचनाओं और मूल्यांकनों के लगातार प्रभाव को देखते हुए, 2011-12 में 6.9 प्रतिशत की दूसरी तिमाही जीडीपी वृद्धि ने विकास संबधी चिंताओं को बढ़ाया है। हमें 16 दिसंबर तक यह देखने के लिए प्रतीक्षा करनी होगी कि कैसे हाल की गतिविधियों को रिज़र्व बैंक के देशी समष्टि आर्थिक संभावना संबंधी मूल्यांकन में लिया जाता है।

11. एक दूसरा मामला जिस पर पिछले कुछ महीनों से जनता का बहुत अधिक ध्यान गया है विनिमय दर में मूल्यह्रास है। इसका मुद्रास्फीतिकारी प्रभाव कठोर मौद्रिक नीति कार्रवाइयों के उद्देश्यों को प्राप्त करने पर पड़ रहा है। यह मानना होगा कि एक व्यापक रूप से बाजार निर्धारित विनिमय दर व्यवस्था में, विनिमय दर का उतार-चढ़ाव किसी भी दिशा में हो सकता है; जहां तक मुद्रास्फीति के प्रबंधन की बात है यह एक बर्हिजातकारक है जो मुद्रास्फीति के अन्य बर्हिजात निर्धारकों के समान है जैसे वस्तु मूल्य अथवा असामान्य मानसून। रिज़र्व बैंक की विनिमय दर नीति किसी ऐसे विनिमय दर के विशिष्ट स्तर से दिशानिर्देशित नहीं है जो या तो निर्यात के लिए लाभदायक हो सकता है अथवा मुद्रास्फीति को रोकने में सहायक हो सकता है। चलनिधि को सीमित करना रिज़र्व बैंक का प्रमुख नीतिगत उद्देश्य बना हुआ है, लेकिन चलनिधि का मूल्यांकन एक गतिशील प्रक्रिया है जो बदलती देशी और वैश्विक दशाओं पर निर्भर है। विनिमय दर में अत्यधिक अस्थिरता समष्टि आर्थिक अस्थिरता का एक संभावित स्रोत है और तदनुसार रिज़र्व बैंक का उद्देश्य एक स्थिर समष्टि आर्थिक वातावरण को सुनिश्चित करने के लिए अस्थिरता को रोकना है। भारतीय रिज़र्व बैंक के पास उस विनिमय दर की अत्यधिक अस्थिरता से प्रभावी तरीके से निपटने के लिए कई साधन हैं जिसको समष्टि आर्थिक अस्थिरता के लिए काफी अधिक जोखिम लाने के रूप में देखा जाता है। जुलाई 2011 से भारतीय रुपये के मूल्य में अमरीकी डॉलर की तुलना में लगभग 15 प्रतिशत की गिरावट आई है, इसने घरेलू मुद्रास्फीति पर वैश्विक वस्तुओं के मूल्यों के मामूली रूप से कम होने के लाभकारी प्रभाव को कम किया है। इस प्रकार, विनिमय दर के मूल्यों में ह्रास से एक नया आघात और चिंता का एक नया क्षेत्र सामने आया है।

12. बहुत लोगों ने प्रत्याशा से अधिक राजकोषीय घाटे के अधिक होने और सरकारी उधार कार्यक्रमों तथा आपूर्ति स्थिति में सुधार के लिए अपर्याप्त राजकोषीय उपायों के वातावरण में मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता पर सवाल उठाये हैं। मौद्रिक नीति की नमनीयता और प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए एक सुदृढ़ राजकोषीय वातावरण की महत्ता की बारे में कोई भी इंकार नहीं कर सकता हैं, लेकिन ऐसे में भारत की राजकोषीय स्थिति को उन्नत देशों की सरकारी जोखिम संबंधी चिंताओं के आइने में नहीं देखा जाना चाहिए। राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंधन अधिनियम (एफआरबीएम), जो 5 जुलाई 2004 को लागू हुआ, के अंतर्गत नियम आधारित दृष्टिकोण अपनाने के कारण भारत वैश्विक संकट के पहले राजकोषीय समेकन के एक मार्ग पर चल पड़ा है। संयुक्त सकल राजकोषीय घाटा (केन्द्रीय और राज्य सरकारों का) एफआरबीएम अवधि से पहले के 9.5 प्रतिशत से काफी अधिक घटकर 2007-08 में 4.1 प्रतिशत हो गया। वैश्विक संकट के संक्रमण से निपटने के लिए और देशी वृद्धि में तीव्र गिरावट से बचने के लिए यह आवश्यक हो गया कि पर्याप्त राजकोषीय प्रोत्साहनों का उपयोग किया जाए जिसमें राजकोषीय समेकन मार्ग से जानबूझ कर अस्थायी तौर पर हटने का उपाय शामिल किया जाए। इसका प्रभाव यह हुआ कि संयुक्त सकल राजकोषीय घाटा 2008-09 में तेजी से बढ़कर 8.5 प्रतिशत तथा 2009-10 में और बढ़कर 9.3 प्रतिशत हो गया। तब से, राजकोषीय घाटे के न घटने की दुरूहता बढ रही है।

13. 2009-10 के अनुमानित 5.5 प्रतिशत और 6.4 प्रतिशत की तुलना में 2010-11 में जीडीपी के 4.7 प्रतिशत के केन्द्र के सकल राजकोषीय घाटे में काफी अधिक सुधार दिखाई दिया। यह सुधार 3जी / बीडब्ल्यूए नीलामियों के एक बारगी राजस्व आगमों और वृद्धि में चक्रीय उर्द्धगामिता के कारण राजस्व की तीव्र बढ़ोतरी में परिलक्षित हुआ जैसाकि सांकेतिक जीडीपी के 12.5 प्रतिशत की अनुमानित वृद्धि की तुलना में सांकेतिक जीडीपी के 20 प्रतिशत की वृद्धि में परिलक्षित हुआ। इस प्रकार, राजकोषीय समेकन के स्थायी अथवा संरचनात्मक प्रेरकों की भूमिका अपेक्षाकृत कमजोर रही। 2011-12 की गतिविधियों से पता चलता है कि जीडीपी के 4.6 प्रतिशत के राजकोषीय घाटे के लक्ष्य को पाया जा सकता है जिसका घरेलू मुद्रास्फीति पर प्रभाव पड़ेगा। रिज़र्व बैंक की मुद्रास्फीति-रोधी

मौद्रिक नीति के रुझान के कारण निजी मांग में कमी आई, जिसकी राजकोषीय घाटे के आकार को देखते हुए सार्वजनिक क्षेत्र की मांग में विस्तार से आंशिक तौर पर भरपाई हुई।

14. वैश्विक संकट से राजकोषीय घाटे के बढ़ने के बावजूद, जीडीपी के प्रतिशत के रूप में ऋण में वृद्धि नहीं हुई है। वास्तव में जीडीपी के प्रतिशत के रूप में देयताएं (केन्द्र और राज्यों की) 2007-08 के 71.4 प्रतिशत से घटकर 2010-11 में 64.3 प्रतिशत हो गई हैं। उच्च मुद्रास्फीति और सांकेतिक जीडीपी से संबद्ध उच्च वृद्धि ने इस कमी में और योगदान किया है। जीडीपी की तुलना में देयताओं के स्तर के बावजूद, भारत सरकार के ऋण की कतिपय अन्य विशेषताएं हैं जिन पर सरकारी ऋण के बारे में मानक संवेदनशील मूल्यांकनों को देखते हुए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत में सार्वजनिक ऋण का एक बड़ा हिस्सा निवासियों द्वारा धारित है; केन्द्र सरकार के लिए 10 वर्ष से अधिक की ऋण की भारित औसत परिपक्वता उससे अधिक है जिन्हें हम कई अन्य देशों में देखते हैं; सांकेतिक जीडीपी में वृद्धि सामान्यतया सांकेतिक ब्याज दरों से अधिक हो जाती है। ऋण पूर्व सुवहनीयता के इन लक्षणों के बावजूद, सांकेतिक अर्थ में केन्द्र सरकार के सकल बाजार उधारों में 2007-08 के लगभग ₹1,800 बिलियन से 2008-09 में ₹3,200 बिलियन की वृद्धि हुई। तबसे, उधार कार्यक्रम के आकार में और वृद्धि हुई है और 2011-12 में लगभग ₹4,700 बिलियन के अनुमानित सकल उधार कार्यक्रम के विपरीत एक अतिरिक्त ₹5,200 बिलियन की घोषणा की गयी है। क्राउडिंग आउट चिंताएं उत्पन्न करने के अलावा, बाजार उधारों के इस क्रम ने भी कठोर चलनिधि दशाओं में उधारों के प्रबंधन को जटिल बनाया है। वैश्विक संकट के तुरंत पश्चात अक्सर यह कहा गया कि देशों को अपनी राजकोषीय स्थिति में सुधार के लिए राजकोषीय स्पेस को प्राप्त करना चाहिए जिससे अर्थव्यवस्था के भावी आघातों से निपटा जा सके। भारत में 2011-12 की दूसरी तिमाही में जीडीपी वृद्धि में प्रत्याशा से अधिक कमी और कमजोर वैश्विक समष्टि वित्तीय दशाओं की विपरीत वायु के लगातार चलने के कारण राजकोषीय स्पेस की महत्ता को बेहतर तरीके से समझा जा सकता है।

15. सम्मेलन के विषय के संदर्भ में, कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या मुद्रास्फीति को हेज किया जा सकता है और इस प्रकार मुद्रा के घटते मूल्य से बचा जा सकता है। भारत में बहुत से लोग सोने को मुद्रास्फीतिक हेज के रूप में प्रयोग करते देखे जा सकते हैं और जैसाकि हम जानते हैं हाल के वर्षों में सोने के उच्च मूल्यों ने भारत में सोने की खरीददारी में कोई रुकावट नहीं डाली है। मांग का मूल नियम अर्थात जब कीमतें बढ़ती हैं तो मांग घटती है - भारतीयों की सोने की मांग पर लागू नहीं प्रतीत होता है। उच्च मुद्रास्फीति वित्तीय बचतों के लिए एक जोखिम है, क्योंकि यह वर्षों से संचित बचतों के मूल्य को घटा सकती है। प्रणाली में उपलब्ध ऐसे वित्तीय लिखतों का निर्माण, जो मुद्रास्फीति के विपरीत प्रभावी हेज प्रदान कर सकता हो, इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हो जाता है। रिज़र्व बैंक भारत सरकार के साथ परामर्श करके इंफ्लेशन इंडेक्स्ड बांड (आईआईबी) जारी करने की संभावना तलाश रहा है। इस पर चर्चा की जा रही है कि क्या मूल और ब्याज भुगतान दोनों को मुद्रास्फीति के साथ इंडेक्स करना चाहिए और क्या उपभोक्ता मूल्य सूचकांक अथवा थोक मूल्य सूचकांक इंडेक्सिग के लिए बेहतर बैंचमार्क हो सकते हैं। इस प्रकार का कोई लिखत बचतकर्ताओं और पेंशनरों की आवश्यकताओं को कुछ सीमा तक ही पूरा कर सकता है, परंतु मुद्रा के घटते मूल्य के जोखिम से निपटने का सर्वोत्तम नीतिगत दृष्टिकोण एक कम और स्थिर मुद्रास्फीति वातावरण सुनिश्चित करना है।

निष्कर्षकारी विचार

16. उच्च मुद्रास्फीति के कारण मुद्रा का घटता मूल्य मुद्रास्फीति-रोधी मौद्रिक नीति की महत्ता को वर्णित करता है। उस देश के लिए जहां पर अभी भी जनसंख्या का बड़ा हिस्सा निर्धनता रेखा के नीचे रह रहा हो, मुद्रास्फीति एक प्रतिगामी कर के रूप में कार्य करती है। कुल मिलाकर जनसंख्या के आर्थिक कल्याण को प्राथमिक रूप से उच्च वृद्धि के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है और वह भी एक कम और स्थिर मुद्रास्फीति के वातावरण में। इसे पता चलता है कि वृद्धि और मुद्रास्फीति का संतुलन मौद्रिक नीति के लिए इतना महत्त्वपूर्ण क्यों है। यह एक उससे अधिक जटिल कार्य है जितना कि यह किसी जन चर्चा में प्रतीत होता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि कम मुद्रास्फीति का ग्रीस इफेक्ट आर्थिक वृद्धि और निवेश गतिविधियों को साकार रूप देने के लिए अनुमति प्रदान करेगा, मुद्रास्फीति को सकारात्मक होना होगा। न्यूनतम स्तर की सकारात्मक मुद्रास्फीति से तात्पर्य क्रय क्षमता में क्षरण से नहीं होगा क्योंकि उच्च वृद्धि से आय में भी वृद्धि होगी, और परिणाम के रूप में निवल क्रय शक्ति बढ़ेगी। जब तक वृद्धि के लाभों का समान रूप से बटवारा नहीं जाता, क्रय शक्ति में यह निवल वृद्धि सभी के लिए नहीं होगी। कुल स्तर पर, सकारात्मक मुद्रास्फीति जो उच्च वृद्धि के साथ सहविद्यमान है, कल्याण को अधिकतम रूप से बढ़ा सकती है। उच्च मुद्रास्फीति, विशेष रूप से न्यूनतम स्तर से ऊपर, से वृद्धि में गिरावट आ सकती है और उच्च मुद्रास्फीति तथा कम वृद्धि कल्याण का क्षरण कर सकती है।

17. आपूर्ति आघात, जो अक्सर वृद्धि की गति को कम करते हैं और मुद्रास्फीतिक दबावों को बढ़ाते हैं, से निपटने की क्षमता बढ़ाने के अलावा, ऐसे परिणाम को रोकने के लिए मौद्रिक और राजकोषीय दोनों नीति को प्रतिचक्रीय होना चाहिए। उदाहरण के लिए इस तथ्य को देखें कि वैश्विक पण्य मूल्य सूचकांक फरवरी 2009 के लगभग 98.2 से बढ़कर अक्तूबर 2011 में 182.9 हो गया है जिसका तात्पर्य यह है कि इसमें 85 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है। इसी अवधि के दौरान भारत का थोक मूल्य सूचकांक 122.9 से बढ़कर 156.8 हो गया है अर्थात इसमें लगभग 27.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इससे निश्चित रूप से मुद्रा के मूल्य में क्षरण हुआ है। मुद्रा के मूल्य में पूर्ति पक्ष के कुछ दबावों के लिए बेहतर क्षमता की आवश्यकता होगी ताकि पूर्ति की स्थिति में सुधार किया जा सके। लेकिन, ग्रामीण क्षेत्र में मजदूरी और कॉरपोरेट क्षेत्र में स्टाफ के पारिश्रमिक में हाल में अनभूत मुद्रास्फीति की तुलना में उच्च गति से वृद्धि हुई है। इसलिए क्रय क्षमता में क्षरण उस तुलना में कम है जो केवल मुद्रास्फीति की संख्याओं में प्रदर्शित होता है। इन सबके बावजूद, मुद्रास्फीति आसान स्थिति से ऊपर बनी हुई है और उसको रोकने की आवश्यकता है। रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति इसे स्पष्ट रूप से मानती है और इसके वर्तमान मुद्रास्फीति-रोधी मौद्रिक नीति रुझान में ऐसा परिलक्षित होता है। वृद्धि में कमी के हाल के उदाहरण से आशा है कि मुद्रास्फीति पर मांग पक्ष के दबाव कम होंगे और वैश्विक पण्य बाजारों के आपूर्ति पक्ष के प्रमुख जोखिमों के अभाव में, 2012 तक मुद्रास्फीति घटकर लगभग 7 प्रतिशत होनी चाहिए। मुझे आशा है कि मैं मुद्रास्फीति के प्रबंधन में रिज़र्व बैंक की भूमिका को और मुद्रा के घटते मूल्य में योगदान करने वाले कुछ गैर- मौद्रिक कारकों की भूमिका को भी बखूबी वर्णन कर सका हूँ।